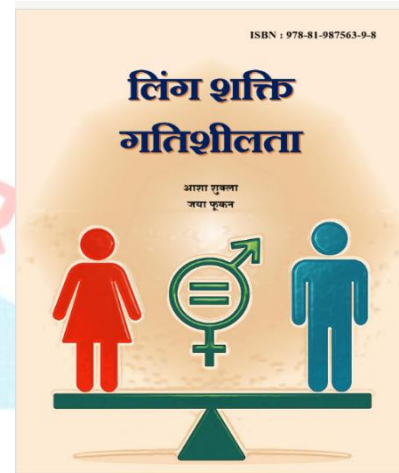


पुस्तक समीक्षा

‘लिंग शक्ति गतिशीलता’: लैंगिक सत्ता, असमानता और प्रतिरोध के बदलते आयामों का बहुआयामी अध्ययन

लिंग शक्ति गतिशीलता, संपादक- आशा शुक्ला एवं जया फूकन,
प्रकाशक – आशा पारस फॉर पीस एंड हारमनी फाउंडेशन, भारत, वर्ष-
2025, पृ.स. 316, मूल्य- 700/- ISBN- 978-81-987563-9-8

पुस्तक समीक्षक- डॉ. रामशंकर, एसोशिएट प्रोफेसर, जनसंचार एवं
पत्रकारिता विभाग, आईआईएमटी कॉलेज ऑफ मैनेजमेंट, ग्रेटर नोएडा,
ईमेल- ramwardha1986@gmail.com



सारांश

प्रस्तुत पुस्तक समीक्षा आशा शुक्ला एवं जया फूकन द्वारा संपादित पुस्तक ‘लिंग शक्ति गतिशीलता’ का आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करती है। पुस्तक में लैंगिक समानता, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, स्त्री विमर्श, विज्ञान में महिलाओं की भागीदारी, विज्ञापन में जेंडर प्रतिनिधित्व, कार्यस्थल पर हिंसा, आर्थिक असमानता, फुले-आंबेडकरी चिंतन, मध्यस्थ दर्शन तथा सांप्रदायिक हिंसा जैसे विविध विषयों को समाहित किया गया है। समीक्षा में पुस्तक की अंतर्विषयक दृष्टि, उदाहरण-आधारित विवेचन और समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। साथ ही इसकी वैचारिक एवं पद्धतिगत सीमाओं पर भी आलोचनात्मक दृष्टि डाली गई है।

मुख्य शब्द: लिंग शक्ति, जेंडर समानता, स्त्री विमर्श, लैंगिक हिंसा, महिला सशक्तीकरण

प्रस्तावना

समकालीन समाज में ‘जेंडर’ का प्रश्न अब केवल स्त्री और पुरुष के बीच जैविक अंतर तक सीमित नहीं रह गया है। यह सामाजिक सत्ता, संसाधनों के वितरण, निर्णय लेने की क्षमता, आर्थिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व, देह पर नियंत्रण, कार्यस्थल की सुरक्षा, ज्ञान-निर्माण तथा राजनीतिक और सामाजिक भागीदारी से जुड़ा हुआ प्रश्न बन चुका है। इसी व्यापक संदर्भ में संपादित पुस्तक ‘लिंग शक्ति गतिशीलता’ लैंगिक संबंधों की जटिल संरचना को समझने का महत्वपूर्ण प्रयास करती है। पुस्तक की विषय-सूची से स्पष्ट होता है कि इसमें विज्ञान में लैंगिक समानता, महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा, यौन शोचिता, आपदाओं में महिलाओं की स्थिति, विज्ञापन में जेंडर पदानुक्रम, आधुनिक भारत में महिलाओं की स्थिति, जेंडर असमानता के विरुद्ध संघर्ष, फुले-आंबेडकरी चिंतन, परिधान उद्योग में वेतन असमानता, कार्यस्थल पर हिंसा, मध्यस्थ दर्शन, वैश्विक लैंगिक हिंसा और सांप्रदायिक हिंसा-विस्थापन जैसे विषय शामिल किए गए हैं।

पुस्तक की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें 'लिंग' को केवल सामाजिक पहचान के रूप में नहीं, बल्कि **शक्ति-संबंधों की संरचना** के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। संपादकीय में शक्ति को निर्णय लेने, संसाधनों पर नियंत्रण, दूसरों को प्रभावित करने और सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करने की क्षमता के रूप में समझाया गया है। इस दृष्टि से लैंगिक समानता का प्रश्न केवल महिलाओं को अवसर देने का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह भी देखना है कि परिवार, कार्यस्थल, विज्ञान, मीडिया और सामाजिक संस्थाओं में निर्णय लेने की वास्तविक शक्ति किसके पास है।

पुस्तक का वैचारिक आधार

पुस्तक की केंद्रीय अवधारणा 'लिंग शक्ति गतिशीलता' अपने भीतर दो महत्वपूर्ण शब्दों को समाहित करती है— 'लिंग' और 'शक्ति'। लिंग सामाजिक भूमिकाओं, अपेक्षाओं और पहचान से संबंधित है, जबकि शक्ति इस बात को निर्धारित करती है कि इन भूमिकाओं और संसाधनों पर नियंत्रण किसका है। पुस्तक इसी संबंध को विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में परखती है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी महिला को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति तो है, लेकिन परिवार में करियर चुनने का निर्णय वह स्वयं नहीं कर सकती, तो केवल शिक्षा की उपलब्धता को वास्तविक सशक्तीकरण नहीं माना जा सकता। इसी तरह किसी महिला का रोजगार में होना भी पर्याप्त नहीं है, यदि उसे समान काम के लिए समान वेतन न मिले अथवा निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर रखा जाए। पुस्तक के अलग-अलग अध्याय ऐसे ही विरोधाभासों को सामने लाते हैं।

प्रस्तावना में यह विचार महत्वपूर्ण है कि शिक्षा, जागरूकता, सामाजिक आंदोलनों और नीतिगत सुधारों के माध्यम से लैंगिक शक्ति संबंधों को बदला जा सकता है। इस प्रकार पुस्तक केवल समस्या-केंद्रित नहीं है, बल्कि परिवर्तन की संभावनाओं को भी रेखांकित करती है।

विज्ञान में लैंगिक समानता : प्रतिभा से अवसर तक

पुस्तक में पहला अध्याय 'समावेशी विज्ञान : लैंगिक समानता के परिप्रेक्ष्य में' इस बात की पड़ताल करता है कि विज्ञान और शोध के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी होने के बावजूद उच्च स्तर पर उनकी उपस्थिति अपेक्षाकृत कम क्यों दिखाई देती है।

अध्याय में 'लीकी पाइपलाइन' का उदाहरण अत्यंत समीचीन है। पुस्तक में UNESCO की 2021 की रिपोर्ट के संदर्भ से बताया गया है कि दुनिया के तीन शोधकर्ताओं में लगभग एक महिला है, लेकिन उच्च शिक्षा और शोध के विभिन्न चरणों में महिलाएं धीरे-धीरे बाहर होती जाती हैं। इसे समझाने के लिए 'लीकी पाइपलाइन' का रूपक इस्तेमाल किया गया है—अर्थात् शुरुआत में प्रतिभागियों की संख्या पर्याप्त होती है, लेकिन करियर की ऊंची सीढ़ियों पर पहुंचते-पहुंचते महिलाओं की संख्या कम होती जाती है।

यह उदाहरण पुस्तक के तर्क को बहुत प्रभावी बनाता है। समस्या यह नहीं है कि महिलाएं विज्ञान में प्रवेश नहीं करतीं; समस्या यह है कि वे प्रवेश से नेतृत्व तक की यात्रा में किन संरचनात्मक बाधाओं का सामना करती हैं। पारिवारिक

जिम्मेदारियां, प्रेरणादायी रोल मॉडल की कमी, प्रकाशन में असमानता और संस्थागत दबाव जैसे कारक इस अंतर को प्रभावित करते हैं।

इसी संदर्भ में पुस्तक 'मटिल्डा प्रभाव' की अवधारणा की ओर भी संकेत करती है। इतिहास में अनेक महिला वैज्ञानिकों के योगदान को पुरुष वैज्ञानिकों की तुलना में कम पहचान मिलना इस बात का उदाहरण है कि ज्ञान-निर्माण भी शक्ति-संबंधों से मुक्त नहीं है।

यह विशेषता उल्लेखनीय है कि वह केवल समस्या नहीं बताता बल्कि समाधान के रूप में मेंटरशिप, समान अवसर, कार्यस्थल की सुविधाओं और परिवार-अनुकूल नीतियों की आवश्यकता पर बल देता है। पुस्तक में यह भी कहा गया है कि समावेशी वैज्ञानिक टीम नवाचार और रचनात्मकता की संभावनाओं को बढ़ा सकती है।

यौन हिंसा : अपराध से आगे शक्ति का प्रश्न

पुस्तक का दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा है। संबंधित अध्याय में यौन हिंसा को केवल व्यक्तिगत अपराध नहीं माना गया, बल्कि इसे व्यापक लैंगिक सत्ता-संरचना से जोड़ा गया है।

एक महत्वपूर्ण उदाहरण यह है कि महिलाओं की गतिशीलता और स्वायत्तता को सीमित करने वाली अनेक सामाजिक प्रथाओं को 'सुरक्षा' या 'परिवार की प्रतिष्ठा' के नाम पर उचित ठहराया जाता है। वास्तव में ऐसी व्यवस्थाएं महिलाओं के जीवन और विकल्पों पर पुरुष नियंत्रण को बनाए रख सकती हैं।

यही पुस्तक की शक्ति-गतिशीलता संबंधी अवधारणा का व्यावहारिक उदाहरण है। किसी महिला को यह कहना कि वह अकेले बाहर न जाए, पुरुष मित्रों से बातचीत न करे या देर रात बाहर न रहे—ऊपरी तौर पर सुरक्षा की सलाह प्रतीत हो सकती है; लेकिन यदि समान स्वतंत्रता पुरुष को प्राप्त है, तो यह सलाह लैंगिक नियंत्रण का रूप ले सकती है।

पुस्तक यौन हिंसा की सामाजिक पृष्ठभूमि को जाति और आर्थिक स्थिति से भी जोड़ती है। इसमें दलित, आदिवासी तथा अन्य हाशिए के समुदायों की महिलाओं के संदर्भ में अंतर्संबंधीयता को सामने लाया गया है।

इस प्रकार पुस्तक का विमर्श 'महिला हिंसा की शिकार है' तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह पूछता है कि कौन-सी सामाजिक संरचनाएं हिंसा को संभव बनाती हैं?

स्त्री की देह और 'यौन शुचिता' का विमर्श

तीसरा अध्याय 'यौन शुचिता के प्रश्नों से जूझता स्त्री विमर्श' पुस्तक का अत्यंत महत्वपूर्ण वैचारिक हिस्सा है। इसमें भारतीय कथा साहित्य में स्त्री की देह और यौनिकता पर सामाजिक नियंत्रण की चर्चा की गई है। पुस्तक का तर्क है कि समाज ने लंबे समय तक महिला की यौनिकता को उसके 'चरित्र' से जोड़कर देखा है। इसके विपरीत पुरुष की यौनिकता को अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त रही है। इस दोहरे मानदंड को स्त्री लेखन ने चुनौती दी है।

अध्याय में साहित्यिक उदाहरणों के माध्यम से विवाहेतर संबंध, समलैंगिक संबंध और स्त्री की यौन आकांक्षाओं पर चर्चा की गई है। उदाहरण के रूप में झुम्पा लाहिड़ी के *The Namesake* और आशा सहाय के *एकाकिनी* जैसे साहित्यिक संदर्भों के माध्यम से स्त्री की यौनिकता और सामाजिक स्वीकृति के प्रश्न को देखा गया है।

इस अध्याय की विशेषता यह है कि 'यौन शुचिता' को नैतिकता की सामान्य अवधारणा मानकर स्वीकार करने के बजाय उसकी सामाजिक उत्पत्ति और पितृसत्तात्मक संरचना पर प्रश्न उठाया गया है। इस तरह स्त्री की देह को केवल नैतिकता के पैमाने से नहीं बल्कि उसकी स्वायत्तता और अस्मिता के संदर्भ में समझने की कोशिश की गई है।

विज्ञापन में जेंडर : मीडिया कैसे शक्ति को सामान्य बनाता है?

पुस्तक का पांचवां अध्याय पत्रकारिता एवं जनसंचार के विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। 'भारत में सांस्कृतिक मानदंड और विज्ञापन में जेंडर पदानुक्रम का सुदृढ़ीकरण' शीर्षक अध्याय यह प्रश्न उठाता है कि विज्ञापन समाज में मौजूद लैंगिक भूमिकाओं को केवल दिखाते हैं या उन्हें और मजबूत भी करते हैं।

पुस्तक में विज्ञापनों के दृश्यात्मक प्रतिनिधित्व का उदाहरण देते हुए बताया गया है कि पुरुष पात्रों को महिलाओं की तुलना में अधिक अधिकारपूर्ण भूमिकाओं में प्रस्तुत किए जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

यहां Goffman के दृश्यात्मक और नैरेटिव कोड का उपयोग महत्वपूर्ण है। विज्ञापन में यदि पुरुष को निर्णय लेने वाला और महिला को सजावटी या घरेलू भूमिका में दिखाया जाता है, तो यह केवल एक विज्ञापन का दृश्य नहीं रह जाता; ऐसे दृश्य बार-बार दोहराए जाने पर वे सामाजिक अपेक्षाओं का हिस्सा बन सकते हैं।

पुस्तक में एक रोचक आंकड़ा भी प्रस्तुत किया गया है—48 प्रतिशत भारतीय उपभोक्ताओं ने ब्रांडों से अधिक समावेशी प्रतिनिधित्व की अपेक्षा व्यक्त की, जबकि वैश्विक स्तर पर यह आंकड़ा 33 प्रतिशत बताया गया है।

यह उदाहरण पुस्तक की प्रासंगिकता को और बढ़ाता है। इससे पता चलता है कि उपभोक्ता अब विज्ञापन में केवल उत्पाद नहीं बल्कि प्रतिनिधित्व और सामाजिक मूल्यों को भी देख रहे हैं। इसलिए विज्ञापन उद्योग के सामने जेंडर-संवेदनशील संचार विकसित करने की चुनौती है।

परिवार, नैतिकता और महिलाओं की सामाजिक स्थिति

आधुनिक भारत में महिलाओं की स्थिति पर केंद्रित अध्याय पुस्तक के सामाजिक आधार को मजबूत करता है। इसमें परिवार और वैवाहिक संबंधों को लोकतांत्रिक, संवेदनशील और समावेशी बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। यहां एक महत्वपूर्ण उदाहरण यह है कि महिला की सामाजिक स्थिति को केवल रोजगार या शिक्षा से नहीं मापा जा सकता। यदि उच्च शिक्षित महिला को परिवार में अपने जीवनसाथी, नौकरी, संपत्ति या बच्चों से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णयों में स्वतंत्रता नहीं है, तो उसका वास्तविक सशक्तीकरण अधूरा है।

इसी प्रकार मीडिया और मनोरंजन उद्योग में महिलाओं के चित्रण का नैतिक प्रभाव भी पुस्तक में चर्चा का विषय है। फिल्मों, वेब सीरीज और टेलीविजन में महिलाओं के चित्रण के बदलते स्वरूप पर प्रश्न उठाते हुए पुस्तक यह विचार करती है कि मनोरंजन की सामग्री सामाजिक मूल्यों को किस प्रकार प्रभावित करती है।

जेंडर असमानता के विरुद्ध पचास वर्षों का संघर्ष

पुस्तक का सातवां अध्याय 1975 से 2025 तक जेंडर असमानता के विरुद्ध संघर्ष की पचास वर्ष की यात्रा को सामने लाता है। यह ऐतिहासिक अध्याय पुस्तक को वर्तमान के साथ-साथ अतीत की सामाजिक प्रक्रियाओं से जोड़ता है। इसका महत्व इसलिए है कि आज उपलब्ध अनेक महिला अधिकार अचानक प्राप्त नहीं हुए हैं। शिक्षा, संपत्ति, राजनीतिक भागीदारी, रोजगार और हिंसा के विरुद्ध अधिकारों के लिए लंबे समय तक सामाजिक आंदोलनों और वैचारिक संघर्षों ने भूमिका निभाई है। पुस्तक में 1975 के मैक्सिको विश्व महिला सम्मेलन और उसके बाद विकसित वैश्विक महिला आंदोलन की पृष्ठभूमि भी सामने आती है।

इस अध्याय को पढ़ते हुए स्पष्ट होता है कि लैंगिक समानता की यात्रा रैखिक नहीं है। कुछ क्षेत्रों में प्रगति हुई है, लेकिन अनेक पारंपरिक संरचनाएं नए रूपों में अभी भी मौजूद हैं।

फुले-आंबेडकरी परंपरा और स्त्री विमर्श

आठवां अध्याय पुस्तक को जाति और जेंडर के अंतर्संबंधों से जोड़ता है। इसमें फुले-आंबेडकरी सत्यशोधक इतिहास लेखन में एलेनोर जेलीअट, गेल ऑम्वेट और रोजालिंड ओ'हैनलन जैसी विदेशी विदुषियों के योगदान का विश्लेषण किया गया है। यह अध्याय विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय स्त्री विमर्श को केवल 'पुरुष बनाम महिला' के द्वंद्व में नहीं समझा जा सकता। जाति, वर्ग और सामाजिक स्थिति महिलाओं के अनुभव को अलग-अलग बनाते हैं।

उदाहरण के लिए, उच्च वर्ग की शिक्षित महिला और आर्थिक रूप से वंचित ग्रामीण महिला दोनों 'महिला' हैं, लेकिन उनके अवसर, सामाजिक नियंत्रण और हिंसा के अनुभव एक जैसे नहीं हैं। पुस्तक का फुले-आंबेडकरी संदर्भ इसी विविधता को समझने में मदद करता है।

परिधान उद्योग में वेतन असमानता : आर्थिक शक्ति का प्रश्न

नौवां अध्याय 'परिधान उद्योग में महिलाओं के वेतन असमानता का विश्लेषण : आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में बाधाएँ और समाधान' आर्थिक शक्ति को केंद्र में रखता है। पुस्तक में परिधान उद्योग को विकासशील देशों में महिलाओं के रोजगार के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक बताया गया है। यहां पुस्तक का मूल तर्क बहुत स्पष्ट है—कम वेतन केवल आर्थिक समस्या नहीं है; यह सामाजिक शक्ति को भी प्रभावित करता है।

उदाहरण के लिए, यदि महिला श्रमिक परिवार की आय में योगदान देती है, लेकिन उसका वेतन पुरुष सहकर्मी की तुलना में कम है, तो आर्थिक संसाधनों में असमानता बनी रहती है। पुस्तक समान वेतन, पदोन्नति के अवसर, बेहतर न्यूनतम वेतन और आर्थिक सहायता जैसे उपायों की आवश्यकता बताती है।

इस अध्याय की खासियत यह है कि इसमें महिला सशक्तिकरण को केवल 'आत्मविश्वास' जैसे मनोवैज्ञानिक शब्दों में नहीं बल्कि आय, श्रम और संसाधनों पर नियंत्रण के संदर्भ में समझाया गया है।

कार्यस्थल पर हिंसा : संस्थागत शक्ति का स्वरूप

दसवां अध्याय कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति हिंसा की समस्या को सामने लाता है। यहां कार्यस्थल केवल रोजगार प्राप्त करने का स्थान नहीं है, बल्कि शक्ति-संबंधों का संस्थागत क्षेत्र भी है। पुस्तक के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध

अपराधों में यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, साइबर अपराध, पीछा करना, दहेज हिंसा, जबरन विवाह, एसिड अटैक और अन्य प्रकार की हिंसा शामिल हैं। इस व्यापक सूची से स्पष्ट होता है कि हिंसा का स्वरूप बहुआयामी है। आज डिजिटल माध्यमों के कारण किसी महिला के विरुद्ध हिंसा कार्यस्थल या घर की भौतिक सीमा से निकलकर सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म तक भी पहुंच सकती है।

इसलिए पुस्तक का कार्यस्थल संबंधी विमर्श केवल कानून बनाने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि संस्थागत संस्कृति, शिकायत-निवारण व्यवस्था और लैंगिक संवेदनशीलता प्रशिक्षण से भी जोड़ा जाना आवश्यक है।

मध्यस्थ दर्शन : संघर्ष से सह-अस्तित्व की ओर

पुस्तक का ग्यारहवां अध्याय इसे अन्य अध्यायों से वैचारिक रूप से अलग पहचान देता है। 'लिंग शक्ति गतिशीलता की अवधारणा : मध्यस्थ दर्शन के परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषण' में सह-अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से स्त्री-पुरुष संबंधों को समझने का प्रयास किया गया है। अध्याय का एक महत्वपूर्ण तर्क यह है कि स्त्री-पुरुष के बीच शक्ति असंतुलन का मूल कारण न्याय, धर्म और सत्य की अवधारणाओं की अस्पष्टता में खोजा जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण का उदाहरण अध्याय के उस विचार में मिलता है जिसमें मानव को केवल 'नर' और 'नारी' की संकीर्ण श्रेणियों में देखने के बजाय मानवता और सह-अस्तित्व के व्यापक संदर्भ में देखने की आवश्यकता व्यक्त की गई है।

यह दृष्टिकोण पुस्तक के अन्य अध्यायों में दिखाई देने वाले संघर्ष, प्रतिरोध और अधिकार के विमर्श के साथ एक वैकल्पिक दार्शनिक आयाम जोड़ता है। हालांकि शोधपरक दृष्टि से यह अपेक्षा की जा सकती है कि मध्यस्थ दर्शन की अवधारणाओं को अधिक अनुभवजन्य अध्ययनों और समकालीन जेंडर सिद्धांतों के साथ तुलनात्मक रूप से जोड़ा जाता।

वैश्विक लैंगिक हिंसा और अंतर्संबंधीयता

पुस्तक का वैश्विक परिप्रेक्ष्य वाला अध्याय जेंडर को जाति, वर्ग, धर्म, यौनिकता, पुरुषत्व, स्त्रीत्व और ट्रांसजेंडर पहचान जैसे अनेक आयामों के साथ जोड़ता है। यह दृष्टिकोण 'intersectionality' की अवधारणा के निकट जाता है। पुस्तक में एशिया के संदर्भ में यह बताया गया है कि जेंडर संबंधी समस्याएं अलग-अलग सामाजिक पहचानों के साथ जुड़ी हुई हैं।

उदाहरण के लिए, किसी महिला के सामने लैंगिक भेदभाव के साथ-साथ जातिगत भेदभाव और आर्थिक वंचना भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में उसकी समस्या केवल 'महिला होने' से उत्पन्न नहीं होती, बल्कि अनेक सामाजिक संरचनाएं एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि पुस्तक की जेंडर संबंधी दृष्टि अपेक्षाकृत व्यापक दिखाई देती है।

सांप्रदायिक हिंसा और विस्थापन

पुस्तक का अंतिम भाग जेंडर, सांप्रदायिक हिंसा और विस्थापन को एक साथ रखता है। यह विषय विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि हिंसा और विस्थापन के अनुभव पुरुषों और महिलाओं के लिए समान नहीं होते। विस्थापन की

स्थिति में महिलाओं की सुरक्षा, आजीविका, स्वास्थ्य, परिवार और सामाजिक नेटवर्क प्रभावित हो सकते हैं। इस प्रकार जेंडर को संकट की परिस्थितियों में भी एक विश्लेषणात्मक श्रेणी के रूप में देखना आवश्यक है।

यह अध्याय पुस्तक की उस व्यापक स्थापना को मजबूत करता है कि लैंगिक शक्ति संबंध केवल निजी जीवन में नहीं बल्कि सार्वजनिक हिंसा और सामुदायिक संघर्षों में भी सक्रिय रहते हैं।

पुस्तक की प्रमुख उपलब्धियां

पुस्तक की पहली बड़ी उपलब्धि इसकी विषयगत व्यापकता है। एक ही पुस्तक में विज्ञान, साहित्य, मीडिया, अर्थव्यवस्था, कार्यस्थल, दर्शन, हिंसा, सामाजिक आंदोलन और विस्थापन जैसे विषयों को जोड़ा गया है। दूसरी उपलब्धि इसका अंतर्विषयक दृष्टिकोण है। समाजशास्त्र का विश्लेषण साहित्य के साथ, मीडिया का अध्ययन सांस्कृतिक मानदंडों के साथ और आर्थिक असमानता को सामाजिक शक्ति के साथ जोड़ना पुस्तक को व्यापक अकादमिक उपयोगिता देता है। तीसरी उपलब्धि इसका उदाहरण-आधारित विवेचन है। जैसे विज्ञान अध्याय में 'लीकी पाइपलाइन', विज्ञापन अध्याय में पुरुष और महिला प्रतिनिधित्व का तुलनात्मक स्वरूप, आर्थिक अध्याय में वेतन असमानता और यौन हिंसा वाले अध्याय में सामाजिक नियंत्रण के उदाहरण पुस्तक के तर्कों को ठोस बनाते हैं।

चौथी उपलब्धि यह है कि पुस्तक केवल पीड़िता-केंद्रित विमर्श नहीं बनाती, बल्कि प्रतिरोध और परिवर्तन को भी महत्व देती है। महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक आंदोलन, संस्थागत सुधार और नीति परिवर्तन को लैंगिक समानता के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

शोध-जर्नल की दृष्टि से पुस्तक का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी आवश्यक है। पुस्तक की सबसे बड़ी शक्ति—विषय-विविधता—कुछ हद तक इसकी सीमा भी बन जाती है। सभी अध्यायों में एक समान सैद्धांतिक ढांचा और शोध-पद्धति दिखाई नहीं देती। कुछ अध्याय अनुभवजन्य आंकड़ों और शोध-पद्धति पर आधारित हैं, जबकि कुछ साहित्यिक या वैचारिक विश्लेषण को प्राथमिकता देते हैं। उदाहरण के लिए, परिधान उद्योग संबंधी अध्याय में साहित्य समीक्षा, सर्वेक्षण और साक्षात्कार जैसे शोध उपकरणों की चर्चा मिलती है, जबकि मध्यस्थ दर्शन संबंधी अध्याय अधिक वैचारिक और दार्शनिक विमर्श प्रस्तुत करता है। इस विविधता को पुस्तक की कमजोरी के बजाय एक संपादित बहुविषयक पुस्तक की विशेषता के रूप में देखा जाना चाहिए।

फिर भी भविष्य के संस्करण में प्रत्येक अध्याय में 'लिंग शक्ति गतिशीलता' की केंद्रीय अवधारणा को अधिक स्पष्ट रूप से जोड़ना पुस्तक की सैद्धांतिक एकरूपता को बढ़ा सकता है। इसी प्रकार डिजिटल मीडिया, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ऑनलाइन लैंगिक हिंसा और डिजिटल श्रम जैसे नए विषयों पर अधिक विस्तृत चर्चा पुस्तक को वर्तमान समय के संदर्भ में और अधिक प्रासंगिक बना सकती है।

निष्कर्ष

समग्र रूप से ‘लिंग शक्ति गतिशीलता’ समकालीन भारतीय समाज में लैंगिक असमानता और सत्ता-संबंधों को समझने वाली एक महत्वपूर्ण बहुविषयक पुस्तक है। इसकी विशेषता यह है कि यह लैंगिक प्रश्न को केवल महिला अधिकारों की समस्या के रूप में नहीं देखती, बल्कि इसे शक्ति, संसाधन, निर्णय, ज्ञान, देह, अर्थव्यवस्था, मीडिया और सामाजिक संरचनाओं के साथ जोड़ती है।

पुस्तक में प्रस्तुत उदाहरण इसके तर्कों को व्यावहारिक आधार प्रदान करते हैं। विज्ञान में ‘लीकी पाइपलाइन’ यह दिखाती है कि प्रतिभा और नेतृत्व के बीच संरचनात्मक बाधाएं मौजूद हैं; विज्ञापन में पुरुषों और महिलाओं के असमान प्रतिनिधित्व का उदाहरण बताता है कि मीडिया सामाजिक भूमिकाओं को कैसे मजबूत कर सकता है; परिधान उद्योग में वेतन असमानता आर्थिक शक्ति की समस्या को सामने लाती है; वहीं यौन हिंसा और सामाजिक नियंत्रण से जुड़े उदाहरण यह बताते हैं कि महिलाओं की स्वतंत्रता पर नियंत्रण अक्सर सुरक्षा, प्रतिष्ठा और नैतिकता के नाम पर संस्थागत रूप ले लेता है।

पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि यह पाठक को केवल यह पूछने के लिए प्रेरित नहीं करती कि ‘महिलाओं के साथ असमानता क्यों है?’, बल्कि इससे आगे बढ़कर यह पूछती है कि ‘समाज में शक्ति का वितरण कैसे हुआ, किन संस्थाओं ने इसे बनाए रखा और इसे बदलने के लिए किन सामाजिक, सांस्कृतिक और नीतिगत हस्तक्षेपों की आवश्यकता है?’

इस अर्थ में लिंग शक्ति गतिशीलता महिला अध्ययन, जेंडर स्टडीज, समाजशास्त्र, सामाजिक कार्य, साहित्य, पत्रकारिता एवं जनसंचार, विकास अध्ययन तथा मानविकी के शोधार्थियों के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ के रूप में देखी जा सकती है। पुस्तक यह स्थापित करने में सफल होती है कि लैंगिक समानता किसी एक वर्ग या लिंग का प्रश्न नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण, लोकतांत्रिक और समावेशी समाज के निर्माण की बुनियादी शर्त है।

संदर्भ

शुक्ला, आशा एवं फूकन, जया (संपा.). (2025). लिंग शक्ति गतिशीलता. भोपाल: आशा पारस फॉर पीस एंड हारमनी फाउंडेशन. ISBN: 978-81-987563-9-8.

ISSN : 3108-0294